JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सैन्धव तथा वैदिक धर्म : एक तुलनात्मक अध्ययन

संतोष कुमार पाण्डेय
शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)
सम्बद्ध : वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

भारत समाज सदा से ही धर्मपरायण समाज रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय जन जीवन किसी न किसी रूप में धर्म से प्रभावित होता रहा है। धर्म तथा समाज के बीच सम्बन्ध की यह परम्परा अति प्राचीन है तथा प्रागैतिहासिक, आद्य ऐतिहासिक काल होते हुए वर्तमान काल तक इसकी निरन्तरता अविच्छिन्न रूप से बनी हुई है। सिन्धु सभ्यता के धार्मिक जीवन की जानकारी मुख्य रूप से पुरातात्विक स्रोतों से ही प्राप्त होती है। धार्मिक दृष्टि से इस समय का समाज मुख्य रूप से मातृदेवी के पूजन पर आधारित था। खुदाई से प्राप्त बहुसंख्यक नारी की मूर्तियों से यह अनुमान लगाया जाता है, कि सैन्धव निवासी मुख्य रूप से मातृदेवी की ही पूजा करते थे। मातृदेवी के अतिरिक्त पशुपति देवता की पूजा, लिंग तथा योनि पूजा, पशु–पक्षियों की पूजा, वृक्ष पूजा, मूर्ति पूजा, नाग पूजा तथा स्वास्तिक जैसे कुछ धार्मिक चिन्ह इनके जीवन के अभिन्न अंग थे। इसके अतिरिक्त अभिचार, तथा परलोकवाद के सम्बन्ध में भी पुरातात्विक साक्ष्यों से जानकारी प्राप्त होती है।[1] सिन्धु सभ्यता में लिखित साक्ष्यों के अपठित होने के कारण धार्मिक जीवन की जानकारी उत्खनन से प्राप्त मूर्तियाँ, मुहर, मृदभाण्ड, अन्य पदार्थों से निर्मित चक्र की आकृति तथा विशिष्ट प्रकार के भवनों से प्राप्त होती है।[2]

वैदिक आर्य बहुदेववादी थे। वे यज्ञ तथा कर्मकाण्ड में अधिक विश्वास करते थे। पितृसत्तात्मक समाज होने के कारण इनके धर्म में पुरुषदेवता ही प्रमुख स्थान पर थे। देवियों का स्थान अपेक्षाकृत निम्न था। देवता से तात्पर्य उस दिव्य शक्ति से है जो मानव जाति का कुछ

उपकार करती है या उसे किसी रूप में कुछ देती है। जिसमें कुछ दिव्य/असाधारण क्षमता है, उसे देवता कहते हैं। अर्थात् देव वह है जो कुछ देता है, स्वयं प्रकाशमान है या दूसरों को प्रकाशित करता है।[3] वैदिक आर्यों का मानना था कि संसार का सृजनकर्ता, पालनकर्ता, संहारकर्ता एक ही ईश्वर है। इन्द्र, मारूत, मित्र, अग्नि, यम, वरूण सब एक ही सत्ता के विविध नाम हैं और उसी एक सत्ता को ही विद्वान लोग इन्द्र, मित्र आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं।[4] प्रस्तुत शोध पत्र में पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर सैन्धव धर्म का जबकि लिखित साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर वैदिक धर्म के विविध पक्षों का अध्ययन किया गया है, इसके साथ–साथ दोनों धर्मों में समानता तथा असमानता की विवेचना करने का भी प्रयास किया गया है।

1. मातृदेवी की पूजा :

सिन्धु घाटी के विविध स्थलों से भारी संख्या में स्त्रियों की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। स्त्रियों की मृण्मूर्तियों के मिलने से यह अनुमान लगाया जाता है कि समाज मातृ सत्तात्मक था। लोग मातृदेवी की पूजा करते थे। वे इसे प्रकृति के रूप में भी पूजते थे।[5] स्त्रियों की मूर्तियाँ सीरिया, मेसोपोटामिया, एशिया माइनर तथा ईरान से प्राप्त हुई हैं।[6] किसी अन्य देश की तुलना में भारत से मातृदेवी की मूर्तियाँ अधिक प्राप्त हुई हैं। मातृदेवी को प्रकृति की माता[7] तथा जगत की माता कहा गया। ऐसी मान्यता थी कि ये प्रकृति से ही उत्पन्न हुई थी जो बाद में शक्ति के रूप में स्थापित हो गई। लोग पुत्र प्राप्ति तथा अपनी रक्षा के लिए इनकी आराधना करते थे। ऋग्वैदिक समाज कृषि से सम्यक रूप से परिचित हो चुका था। इस समय अन्न तथा दूध मुख्य भोज्य पदार्थ था, ऋग्वेद में इला को अन्न की देवी बताया गया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कहा गया कि– इलादेवी, सरस्वती तथा मही सुख देने वाली, विनाशरहित तीनों देवियाँ कुशों पर विराजें।[8] सायण ने भाष्कराचार्य में इला को पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी बताया। विश्वामित्र ने ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में सरस्वती तथा भारती के साथ इला देवी की स्तुति की।[9] सातवें मण्डल में वशिष्ठ का कथन है कि– हे सरस्वती इस यज्ञ का हवन करते हुए हम प्रार्थना द्वारा आपसे धन प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं। आप हमारी स्तुति को स्वीकार करें। जिस प्रकार पक्षी वृक्ष पर आश्रय चाहता है ठीक उसी प्रकार हम आपकी शरण में आश्रय चाहते हैं।[10] वैदिक ग्रन्थों में सरस्वती को नदीतमें, अम्बितमें, देवितमें

कहा गया।[11] ऋग्वेद में सरस्वती नदी को दूध और घी से परिपूर्ण, गाय की तरह पालन करने वाली तथा सप्त सैंधव नदियों की जननी भी कहा गया।[12]

पुरुष तथा रूद्रदेवता :–

मोहनजोदड़ों से तीन मुहरे प्राप्त हुई हैं जिसमें से एक पर चित्र अधिक स्पष्ट है, इस पर पुरुष देवता चित्रित हैं, इस पुरुष देवता के तीन मुख तथा तीन नेत्र हैं, ये ध्यान की मुद्रा में हैं। इनके सिर के पीछे/ऊपर त्रिशूल या सींग की तरह की आकृति है। इनके बाईं ओर गैण्डे तथा भैसे की जबकि दाहिनी तरफ हाथी और व्याघ्र का अंकन है। इनके आसन के नीचे दो हिरण का अंकन है। सर जान मार्शल ने इसे शिव पशुपति का आद्यरूप बताया। इस पुरुष देवता के सम्बन्ध में अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग मत व्यक्त किए हैं– एल0एम0 जोशी के अनुसार यह कोई सिद्ध पुरुष प्रतीत होता है। एम0के0 धवलिकर, हर्बर्ट सुल्लिवज ने इसे वन्य पशुओं की देवी माना। एम0वी0एन0 कृष्णराज ने इसे इन्द्र कहा जबकि केदार नाथ मिस्त्री ने इसे रूद्र से मिलता–जुलता संश्लिष्ट देवता बताया। मुद्रा के दूसरी तरफ बीचो–बीच में पीठासन पर आसीन एक पुरुष का चित्र है इसके बाई ओर सिंह का शिकार करता हुआ दृष्य है जबकि दाहिनी तरफ बाड़े में कुछ पशु चित्रित हैं। इस पुरुष को भगवान शिव बताया गया जिनको अपने प्रिय पशु वृषभ तथा त्रिशूल के साथ अंकित किया गया, मुद्रा पर अंकित दृष्य को शिव मन्दिर कहा गया। प्राचीन काल में भगवान शिव की कल्पना शिकार करने वाले देवता के रूप में की गई। हड़प्पा से प्राप्त एक मुहर पर शिकारी, वेशभूषा में सींग से सुसज्जित तथा पत्तियाँ पहने हुए एक देवता अंकित है विद्वानों ने इसे किरात शिव का रूप बताया है। कालीबंगा, कोटदीजी, गुमला के प्राग्सैन्धव मृण्पात्रों पर श्रृंगी देवता का अंकन है ये सिन्ध, पंजाब बलूचिस्तान, राजस्थान के कुछ स्थलों में प्राग्सैन्धव एवं सैन्धव धर्म में इस देवता के महत्वपूर्ण होने की तरफ संकेत करते हैं।[13] ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद के कई सूक्तों में रूद्र का वर्णन पाप्त होता है। यजुर्वेद के अनुसार रूद्र के पास (3) शक्तियाँ थी– संसार का सृजन, संसार का पालन पोषण तथा संसार का विनाश (संहार), यहाँ पर उसे त्रयंबक कहा गया।[14] रूद्र की प्रशंसा करते हुए यजुर्वेद में बताया गया कि वह द्युलोक में वर्षा के रूप में, अन्तरिक्ष में वायु तथा पृथ्वी पर अन्न के रूप में विद्यमान है। यहाँ पर संसार को स्वस्थ तथा सुखी रखने के लिए रूद्र से प्रार्थना की गई। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में रूद्र का वर्ण एक महान योद्धा तथा

सेनापति के रूप में प्राप्त होता है। रूद्र को जटाजूटधारी तथा स्वर्ण निर्मित पगड़ी धारक बताया गया उनके पास सहस्त्रों व्यक्तियों को मार डालने के लिए अनेकों बाण हैं। वो द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं। यजुर्वेद में शिव को गिरीश, नीलग्रीव, जगतपति, पशुपति, क्षेत्रपति, वनपति, सहस्त्राक्ष, वृक्षपति, सेनानी, गणपति, शिव, शंकर, शंभु, भव, शर्व, शितिकण्ठ कहा गया।[15] रूद्र एक साथ विनाश तथा कल्याण दोनों के देवता बताए गए।[16] रूद्र में रोगों से मुक्ति दिलाने की असीम क्षमता थी, वह मनुष्य तथा देवताओं दोनों का कल्याण कर सकने में समर्थ थे। रूद्र को क्रोधित तथा विनाशकारी देवता बताया गया। अश्व, गाय तथा परिजनों को उनके क्रोध से मुक्ति दिलाने के लिए प्रार्थना की गई। रूद्र अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं तथा प्रार्थना (पूजा–पाठ) करने वालों की रक्षा करते हैं, वह अनेक औषधियों के जानकार होने के कारण चिकित्सक की भी भूमिका अदा करते हैं।[17]

जल पूजा :–

सिन्धु सभ्यता में जल पूजा के प्रचलन के प्रमाण अप्रत्यक्ष रूप से ही प्राप्त होते हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त वृहतस्नानागार के आधार पर जल पूजा का अनुमान लगाया जा सकता है। इस स्नानागार के आकार–प्रकार तथा परवर्ती काल में नदी, तालाब आदि में धार्मिक उत्सवों के अवसर पर स्नान करने की परम्परा के आधार पर कई विद्वानों में इसे सार्वजनिक धार्मिक अनुष्ठान स्थल कहा तथा इसे जल की पवित्रता का प्रमाण माना है। कुछ अन्य स्थलों पर भी जल की पवित्रता को दर्शाने वाले साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए कालीबंगा में अग्निवेदिकाओं के निकट ईटों से निर्मित एक कूप एवं स्नान करने के लिए फर्श निर्मित होने के साक्ष्य मिले हैं। ऐसा माना जाता है कि यज्ञ आदि धार्मिक कार्य करने से पूर्व पुरोहित तथा सामान्य लोग इस कुँए एवं फर्श का प्रयोग करके स्नान करने का कार्य करते थे।[18] ऋग्वैदिक ग्रन्थ में आपः को जल की देवी बताया गया, इनसे सम्बन्धित चार सूक्त ऋग्वेद में मिलते हैं। आपः को स्नेह से परिपूर्ण जननी की तरह बताया गया, यह हमें अपने जल से जीवन प्रदान करती है। इसका जल हमें रोगों से मुक्त करके स्वस्थ बनाता है। शक्ति देने के साथ–साथ अमृत की भाँति यह जीवनदान देता है। ऋग्वेद में कई स्थानों पर आपः की सोम के साथ निकटता भी दर्शायी गयी है, इसका कारण यह था कि सोम में भी जल की आवश्यकता होती थी।[19]

पशु पूजा :–

सैन्धव मुहरों पर विविध प्रकार के पशुओं का अंकन मिलने से पता चलता है कि लोग पशु पूजा करते थे। इसके अतिरिक्त धातु, मिट्टी तथा पत्थर की बनी हुई पशुओं की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई। एक मुहर पर दो चीते दिखाई देते हैं। एक ओर योगी के बैठे होने का अंकन है। मुद्राओं व ताम्रपट्टियों पर भैसा, भारतीय नील गाय, वृषभ, हाथी गैण्डे, बाघ तथा छोटे सींग वाले जानवरों का अंकन प्राप्त होता है।[20] कुछ सीलों पर बैल, बकरी, हाथी का चित्र भी मिलता है। लोथल से प्राप्त एक सील में बकरी का चित्रण है। बनावली से प्राप्त एक मुहर पर चीते का अंकन मिलता है। वर्तमान समय में भी भारतीय समाज में पशुपूजा प्रचलित है। सिन्धु सभ्यता में भी लोग पशु पूजा करते थे, इस समय पशुओं में कूबड़ वाला वृषभ सर्वाधिक पूज्यनीय था। वृषभ को शिव का वाहन माना गया। पशुओं के पास विशिष्ट गुण तथा बल भी थे जो मनुष्य के लिए सर्वाधिक उपयोगी थे। वैदिक काल में गाय सर्वाधिक सम्मानित पशु थी इसका दूध अत्यन्त लाभदायक व स्वास्थ्यवर्धक होता है, इसी कारण इसे अघन्या कहा गया तथा इसकी हत्या करने वाले के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया।[21] इनके महिमामण्डन के साथ–साथ दीर्घायु व कल्याण के लिए प्रार्थना भी की गई।[22] इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल में ऋषियों ने घोड़े या अन्य किसी पशु की तुलना में गाय को सर्वाधिक महत्व दिया।

वृक्ष पूजा :–

सैन्धव सभ्यता में मुहरों तथा मृदभाण्डों में पीपल, नीम, बबूल, नीबू, खजूर, ताड़, केले के पौधे का चित्र प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि सिन्धु सभ्यता के समाज में वृक्षों को पवित्र समझा जाता था। विद्वानों की धारणा है कि पीपल वृक्ष के नीचे सिन्धु सभ्यता का प्रमुख देवता निवास करता था। इसी कारण इसे पवित्र स्थान दिया गया। कालान्तर में पीपल के पेड़ की उपासना स्वतन्त्र रूप में प्रचलित हुई। वर्तमान समय में भी भारत में पीपल, केला, वट तथा तुलसी जैसे पौधों व वृक्ष की पूजा की जाती है।[23] अथर्ववेद से जानकारी प्राप्त होती है कि लोग युद्ध में विजय प्राप्ति तथा पुत्र प्राप्ति की इच्छा से पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष की पूजा करते थे।[24] केला, वट, नीम, तुलसी, बबूल का भी इसी प्रकार धार्मिक महत्व था। वैदिक देवताओं में सोम सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवता थे, ऋग्वेद का नवम मण्डल इन्हीं को समर्पित है। सोम को अमृततुल्य मृत

संजीवनी कहकर स्तुति की गई।[25] सोम एक प्रकार का पौधा था, जिसे कूटकर सोमरस तैयार की जाती थी। यज्ञ के अवसर पर इसे देवताओं को चढ़ाया जाता था तथा पुरोहित व यजमान इसे पीते भी थे। वशिष्ठ तथा राहूगण जैसे ऋषियों ने सोमरस के महत्व का वर्णन किया है। इससे अमरत्व व सौभाग्य की प्राप्ति होती थी। यह शक्ति, स्फूर्ति एवं खुशी प्रदान करता है। ऋग्वेद में सोम के वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि धार्मिक जीवन में यह सर्वाधिक महत्व का था।[26]

अग्नि पूजा :–

हिन्दू धर्म में अधिकांश कार्य अग्नि से सम्बन्धित तथा प्रभावित है। सिन्धु सभ्यता के अधिकांश स्थलों (राखीगढ़ी, कालीबंगा, बनावली, लोथल) से ऐसे धार्मिक अनुष्ठानों के प्रमाण मिलते हैं जिनमें अग्नि आवश्यक थी। सिन्धु सभ्यता के आवासीय नगर में एक कमरा विशेष रूप से अग्निकुण्ड के लिए आरक्षित होता था। इसे अग्निवेदिका नाम दिया गया। कालीबंगा से कुछ अग्निवेदियाँ प्राप्त हुई हैं। इसके समीप ही पकी मिट्टी से निर्मित आयताकार कुण्ड था। इसमें बारहसिंहा, गाय तथा वृषभ की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं जो यज्ञ में पशुबलि का संकेत है। ये अग्निवेदियाँ सार्वजनिक उपयोग के लिए थी। बनावली, लोथल, तथा एस0आर0 राव के अनुसार रंगपुर के कुछ घरों से भी अग्निवेदियाँ एवं अग्निपूजा के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। राखीगढ़ी के प्राकसैन्धव स्थल (खात0एस0 22) से अग्नि की एक वेदी व इसके निकट ईटों से निर्मित एक कुण्ड में पशुओं की अस्थियाँ प्राप्त हुई इसी प्रकार खात टी 23 से बनावली के समान तीन वृत्ताकार अग्नि वेदियाँ प्राप्त हुई। वेदों में अग्नि मूर्घन्य देव माने गए जो भौतिक अग्नि से लेकर परमात्मा तक के बोधक हैं। सभी यज्ञों का आधार अग्नि ही है अग्नि के बिना दैनिक जीवन में कोई कार्य संभव नहीं था, अग्नि देवों का दूत है, उनका मुख है, इसी के द्वारा समस्त देवता भोज्य पदार्थ ग्रहण करते हैं। अग्नि ही सभी देवताओं का अंश उनके पास पहुचाता था। अथर्ववेद में (3) प्रकार की अग्नि का वर्णन है– गार्हपत्य, आह्वनीय, दक्षिणाग्नि।[27] अथर्ववेद के अनुसार अग्नि विभिन्न रूपों में सभी पदार्थों में विद्यमान है, यह जल में विद्युत के रूप में, मेघ में बिजली के रूप में, पत्थरों में चिंगारी के रूप में, मनुष्यों तथा पशु–पक्षियों में स्फूर्ति के रूप में एवं वनस्पतियों में ऊष्मा के रूप में पायी जाती है। वैदिक युग में धर्म और यज्ञ दोनों ही मानव जीवन के विकास में अभूतपूर्व योगदान देने वाले थे, यही कारण है कि यज्ञ को धर्म

का अंग मान लिया गया।[28] यज्ञ करने के लिए अग्नि आवश्यक थी, इसलिए अग्नि को महत्वपूर्ण देवताओं की श्रेणी में स्थान मिला।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार सैन्धव तथा वैदिक धर्म का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट पता चलता है कि दोनों धर्मों में कुछ समानता तथा कुछ स्थानों पर असमानता थी। यदि समानता की बात की जाए तो एक तरफ जहाँ हमें सैन्धव सभ्यता के लोथल, कालीबंगा, बनावली जैसे स्थलों पर अग्नि वेदिकाओं के साक्ष्य मिलते हैं, जो अग्निपूजा तथा अग्नि के महत्व को दर्शाते हैं। वहीं वेदों में अनेक स्थानों पर अग्नि की महिमामण्डन की गई। अकेले ऋग्वेद में अग्नि से सम्बन्धित 200 सूक्त प्राप्त होते हैं, जो अग्नि तथा यज्ञ के महत्व को दर्शाने के लिए पर्याप्त हैं अतः यज्ञ तथा अग्निपूजा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में दोनों धर्मों में समान थी। इसी प्रकार दोनों धर्मों में नागपूजा, पीपल वृक्ष की पूजा, सूर्य पूजा, स्वास्तिक जैसे कुछ धार्मिक चिन्हों की पूजा, पशु–पक्षियो की पूजा में समानता दिखाई पड़ती है। सैन्धव धर्म में जहाँ पशुपति रूप में भगवान शिव की पूजा की गई वहीं वैदिक काल में रूद्र तथा अन्य स्वरूप में भगवान शिव की पूजा की गई। यदि दोनों धर्मों में असमानता की बात की जाए तो जहाँ सैन्धव धर्म में मातृदेवी को सर्वोच्च स्थान मिला वही वैदिक धर्म में पुरुषदेवता (इन्द्र, अग्नि, वरूण) को सर्वोच्च स्थान मिला, यहाँ पर देवियों की स्थिति, देवताओं की तुलना में निम्न थी। जहाँ सिन्ध सभ्यता के लोगों के धर्म का स्वरूप इहलौकिक था, ये लोग लिंगपूजा तथा मूर्तिपूजा के समर्थक थे, वहीं वैदिक आर्य बहुदेववाद के समर्थक थे, ये लोग यज्ञ आदि कर्मकाण्डों में विश्वास रखते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. पाण्डेय, जय नारायण, सिन्धु सभ्यता, पृ0 64
2. पाण्डेय, जय नारायण, पुरातत्व विमर्श, पृ0 381
3. गुप्ता, दीपा, वैदिक युगीन, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, पृ0 101
4. ऋग्वेद 1/164/46
5. मार्शल, सर जॉन, मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्ड्स सिविलाइजेशन, पृ0 52
6. ब्रिजेंट एण्ड रेमण्ड आलचिन, द राइज ऑफ सिविलाइजेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ0 214

7. अपार्ट, जी0, आन द ओरिजनल इन अवीटैन्ट्स ऑफ भारत वर्ष इन इण्डिया, पृ0 449–50

8. ऋग्वेद 1/13/9

9. सिंह, कृपाशंकर, ऋग्वेद हड़प्पा सभ्यता तथा सांस्कृतिक निरन्तरता, पृ0 239

10. ऋग्वेद 7/95/5

11. ऋग्वेद 2/41/16, 6/61, 8/81, 7/96, 10/17

12. ऋग्वेद 3/31/3, 7/9/52, 7/36/6, 8/21/18

13. मिश्र, श्याम मनोहर, सैन्धव संस्कृति, पृ0 59–61

14. गुप्ता, दीपा, वैदिक युगीन, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, पृ0 107

15. द्विवेदी, कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ0 303

16. ऋग्वेद 1/114/3, 2/33/7, 2/33/11, 2/33/14, अथर्ववेद 11/2/7

17. सिंह, कृपाशंकर, ऋग्वेद हड़प्पा सभ्यता और सांस्कृतिक निरन्तरता, पृ0 216
ऋग्वेद 1/114/5, 2/33/2, 7/46/3

18. मिश्र, श्याम मनोहर, सैन्धव संस्कृति, पृ0 70–71

19. सिंह, कृपाशंकर, ऋग्वेद हड़प्पा सभ्यता और सांस्कृतिक निरन्तरता, पृ0 244–45

20. राव, एस0आर0, डाउन एण्ड डेबुलेषन ऑफ द इण्ड्स सिविलाइजेशन, पृ0 293–94

21. ऋग्वेद 1/101/15, 2/35/7
अथर्ववेद 1/4/16, 9/4/20

22. ऋग्वेद 10/19/1, अथर्ववेद 4/21/5

23. पाण्डेय, जयनारायण, सिन्धु सभ्यता, पृ0 70

24. अथर्ववेद 3/6/2

25. चक्रवर्ती, रणवीर, भारतीय इतिहास आदिकाल तक, पृ0 107

26. ऋग्वेद 8/48/3, 9/1/1, 10/85/3

27. अथर्ववेद 18/4/11

28. द्विवेदी पारसनाथ, वैदिक साहित्य का इतिहास, पृ0 73